P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-IV, ISSUE-II, November-2015
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

वेदोक्त–चारित्रिक–शिक्षा–वैशिष्ट्यम्

सहदेव शास्त्री
वरिष्ठ प्रवक्ता,
संस्कृत विभाग,
स.ध. राजकीय महाविद्यालय,
ब्यावर, अजमेर

सारांश

प्रस्तूयमान शोध–पत्र में संसार के मनुष्यों को सच्चरित का सदुपदेश वेदानुसार सोदाहरण दिया गया है जो पाश्च्यात नर यों कहते हैं कि भारतवर्ष गड़रियों, बूतपरस्तियों, भ्रष्ट्राचारियों, अशिक्षितों, अंधविश्वासियों आदि का देश है, वस्तुतः उन्होंने वेदों के रहस्यों को नहीं समझा। भारतवर्ष वस्तुतः शिक्षाजगत् में विश्वशिरोमणि, स्वर्णचटका, विश्वगुरु, विश्ववन्दनीय चारित्रिक देश विश्वपटल पर रहा है वर्तमान मे भी है तथा भविष्य में भी रहेगा। मनुमहर्षि के शब्दों में प्राचीनकालीन वैदेशिक विज्ञ मनुष्य इसी भारतवर्ष के समादृत विश्ववन्दनीय सच्चारित्रिक अग्रजन्मना गुरुजनों के सान्निध्य में आकर अपने–अपने चारित्रिक वेदोंपदेश की शिक्षा लिया करते थे। प्रथमतया विश्वपटल के भूमण्डल से दक्ष मनुष्य यहाँ भारत के चारित्रिक शिक्षा लेकर चरित्रवान् बनते थे किन्तु सम्प्रति वैदेशिक तकनीकी आदि शिक्षा ग्रहण करने हेतु आज हमारे Brean Drean (विज्ञ वैज्ञानिक) विदेशों से शिक्षा ग्रहण करने जाते हैं यही भारत के ऋषिमुनियों की शिक्षा के लिए महत्ती विडम्बना है किन्तु आज समग्र विश्व को आह्वान है कि भारत वर्ष विश्व गुरु होने के कारण "Make in India" का आह्वान किया गया है चूंकि ''भारतवर्ष वह पारसमणि पत्थर है जिसे छूने से पत्थर भी स्वर्ण बन जाता है'' किन्तु इसमें चाणक्य राजनीति की एक संगठन की आवश्यकता है सच्चरित्रवान विज्ञ शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों, वेदमनीषियों की सच्चरित्रता की परम नितान्त अनिवार्यता एवं उपादेयता की जरूरत है पुनरपि यही भारतवर्ष विश्ववन्दनीय विश्वगुरु सच्चरित्रता के आधार पर विश्व शिरोमणि कहलायेगा तभी तो मनु के वचनानुसार–

एतद्देशप्रसूतस्य शकासादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्याः सर्वमानवाः।।

(मनु.2 अ.)

मुख्य शब्दः वेदोक्त, चारित्रिक, शिक्षा, वैशिष्ट्यम्।

पस्तावना

विधिवेत्ता आद्य–ऋषि–मनुमहर्षि के कथनानुसार संसार के ज्ञान–विज्ञान–यज्ञकर्म–उपासना सदाचार–धर्म–दर्शन आदि को जानने के इच्छुक व्यक्तियों के लिए वेद ही परम–प्रमाण–उत्स है **''धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः''**(मनु.2.)। यही वेद मानवमात्र को आगे बढ़ने एवं विजय प्राप्त करने के लिए चेतावनी देते हुए कहता है–**''प्रेता जयता नरः''**(ऋ.वे.10.103.13) यही वेद मनुष्य को प्रगतिषील बनाकर आगे बढ़ाता है **''उत्क्रमात पुरुषमावपत्था मृत्योः षड्वीशमवमुञ्चमानः** (अ.वे.1,4) अर्थात् हे पुरुष! अपनी वर्तमान अवस्था से ऊपर उठ, नीचे मत गिर। यदि मृत्यु भी तेरे मार्ग पर आए, तो उसकी बेड़ियों को भी काट डाल। पुनश्च अथर्वा ऋषि आदेश देता है–**''उद्यानं ते पुरुषं नावयानम्''** (अ.वे.1.6) अर्थात हे मानव! तुम ऊपर उठो, आगे बढ़ो, नीचे मत गिरो, पतन की ओर मत जाओ। जहाँ यजुर्वेद यह आदेश देता है–**''युयोध्यस्मज्जुराणमेनः''** (य.वे.40,16) अर्थात् हे प्रभो! हमसे कुटिलता युक्त पाप को दूर कर दीजिए वहीं अथर्ववेद **''आरोह तमसो ज्योतिः''**(अ.8.1.8) अर्थात् अन्धकार से प्रकाश की ओर, दुर्गुणों से सच्चरित्र की ओर चलो। जब दुर्गुण, दुर्व्यसन, कुभावना, कुवासना, दुरित और बुरे विचार आपके मन में आने लगे, और आपको सताने लगे, तो अथवा ऋषि मानव को चेतावनी देते हुए कहते हैं–

परोपेहि मनस्पाप! किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि संचर गुहेषु गोषु मे मनः ।।

(अ.वे.6.45.1)

अर्थात्! हे मेरे मन के पाप! दूर भाग जा। क्यों मुझे गन्दी सलाह दे रहा है? मुझे क्यों कुमार्ग की ओर ले जा रहा है? दूर हट, मैं तुझे नहीं चाहता। तू वृक्षों के पास जा। तू वन में जा कर विचर। मेरा मन तो गोसंरक्षण और गृहकार्यों में लगा हुआ है। यही वेदोक्त उत्तम चरित्र, का वैशिष्ट्य मनुष्यों के लिए एक दिव्य एवं महान्शक्ति है। पुनश्च वायुऋषि यजुर्वेद में आदेश देता है–

''स्वं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व''

(य.वे.23.15)

हे मानव! शक्तिशालिन्! अपने जीवन का वेदरूपी शिक्षा से निर्माण करो अपने चरित्रों को उन्नत बनाओ। संस्कृतनिष्ठ चरित्र शब्द् **चर–गत्याचरणयोः** धातु से व्याकरणिक ष्ट्रन् प्रत्यय से निष्पन्न गति एवं आचरण को इंगित करता है। श्रेष्ठ एवं शुभ आचरण का नाम चरित्र है। यद्यपि चरित्र छोटा सा शब्द है तथापि इसमें संसार के समस्त वेदोक्त शिक्षाएँ, शुभगुणों एव कर्मों का समावेश हो जाता है। सत्य, दया, आर्जव, निश्कपट, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अस्तेय, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय निर्भय, दान आदि सभी उत्तम कर्म चरित्र की सीमा में आ जाते हैं। सम्प्रति उक्त शोधपत्र में चतुर्वेदोक्त चारित्रिक वैशिष्टय यथाशक्य दिङ्मात्र प्रस्तुत किया जा रहा है –

राजर्शिमनु ने धर्म का मूलस्रोत बतलाते हुए वेद को सर्वप्रथम स्थान दिया है –

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव,च।।

(मनुस्मृति 2/6)

'समस्त वेद, वेद के जानने वालों की स्मृतियाँ और उनका शील, धार्मिकों का आचार और अन्तरात्मा की आन्तरिकतुष्टि–ये धर्म के मूल हैं।'' चारित्र्य का निर्माण करने वाले दैवीतत्त्व वेद में कूट–कूट कर भरे हैं। यहाँ उनका कुछ दिग्दर्शन कराया जा रहा है–

सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेषाम्।

(ऋ0 4/33/6)

'नर सदा सत्य ही बोलते आये हैं और उन्होंने सदा सत्य का ही आचरण किया है और इससे उन बुद्धिमानों ने सर्वसमर्थ आत्मिकशक्ति प्राप्त की।'

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय
सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।

(ऋ.7.104.12,अ.वे. 8.4.12)

'मनुष्य जब सत्य और श्रेष्ठ ज्ञान की खोज में होता है तब उस विवेकशोल पुरुष के सामने सत्य और असत्य वचन दोनों स्पर्धा करते हुए आते हैं। उन दोनों में से जो सत्य है, उसका सोम परमेश्वर रक्षा करते हैं और असत् का नाश कर देते हैं।

इच्छन्ति देवाःसुन्वन्तं न स्वप्राय स्पृहयन्ति।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः।

(ऋ 8.2.28, अथ.20.18.3)

'देवलोग श्रेष्ठ और निःस्वार्थ यज्ञ–कर्म करने वाले को ही चाहते हैं निद्राशील आलसियों को नहीं। स्वयं आलस्यरहित वे गलती एवं भूल करने वाले का नियमन करते हैं।' (ए.ब्रा.में एतद्भाव हैं।)

मा प्रगामपथो वयं मा यज्ञदि्न्द्रि सोमिन।
मान्तःस्थुर्यो अरातयः।।

(ऋ10.57.1,अ.वेद. 13.1.59)

'परमेश्वर! हम सन्मार्गो को छोड़कर न चलें। ऐश्वर्यशाली होते हुए भी हम यज्ञ का मार्ग छोड़कर न चलें। हमारे अंदर काम, क्रोध आदि शत्रु न रहें।

चोद्यित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं द्धे सरस्वती।।

(ऋ.वे.1.3.11)

'सच्ची और प्यारी वाणी को प्रेरित करती हुई और अच्छी बुद्धियों को चेताती हुई सरस्वती देवी हमारे जीवन–यज्ञ को धारे हुए चल रही है।''

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृष्णं
बृहस्पतिर्मे तद्धातु ।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः।।

(य.वे. 36.2)

'मेरी आँख आदि बाह्य इन्द्रियों को जो छिद्र एवं दोष है, उनकी जो त्रुटि एवं न्यूनता है, मेरे हृदय का, मन या बुद्धि का, जो गहरा छिद्र एवं दोष है, उसे इस बृहत् विष्व का ज्ञानमय रक्षक परमेश्वर ठीक कर दे। भुवन का स्वामी हमारे लिये कल्याणकारी हो।'

परि माग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज।
उदायुषा स्वायुषोद्स्थाममृता अनु।।

(य.वे.4.28)

'मेरे जीवन–यज्ञ के अग्रणी अग्निदेव मुझे दुश्चरित से सब ओर से बचा और सुचरित में मेरी प्रीति और भक्ति हो। मैं उस का सेवन करूँ देव और देवता मानवों का अनुसरण करूँ, मैं अपने जीवन में उत्थान के मार्ग पर आरूढ़ होऊँ और फिर सज्जीवन से सर्वांग सुन्दर–जीवन से उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित हो जाऊँ।'

'वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि
श्रोत्रं ते शुन्धामि।
नाभि ते शुन्धामि मेद्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि
चारित्रांस्ते शुन्धामि।।'

(य.वे. 6.14)

'मैं तेरी वाणी को शुद्ध करता हूँ, तेरे प्राण, तेरे नेत्र और श्रोत्र को शुद्ध करता हूँ। मैं तेरी नाभि, उपस्थेन्द्रिय और गुदा को शुद्ध करता हूँ, मैं तेरी सभी इन्द्रियों के चरित्र, व्यवहार और वर्तन को शुद्ध करता हूँ। जब शरीर की समस्त इन्द्रियों का व्यवहार सर्वथा शुद्ध तथा पवित्र होता है, तभी मनुष्य चरित्रवान् और सच्चरित्र कहा जाता है।यदि किसी एक भी इन्द्रिय का व्यवहार अयोग्य, अशुद्ध और अपवित्र है,तो मनुष्य चरित्रहीन है।

प्रतिष्ठायै चरित्राय अग्निष्ठाऽभि पातु।

(का.सं. 31.23, य.वे. 13.19)

'तेरे जीवन–यज्ञ का पुरोहित अग्नि तेरी प्रतिष्ठा और चरित्र को बनाये रखने के लिये तेरी रक्षा करे।'

चरित्रांस्ते मा हिंसिषम्।

(य.वे. का.सं. 3.22)

(माता, पिता और आचार्य) पुत्र एवं शिष्य के चरित्र को, आचरणों को किसी प्रकार भी बिगड़ने या नष्ट होने न दें।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहित यदायुः।।
(ऋ.य.सा.वे. 1.89.8,24.31.9.3)

'यजनीय देवो! हम कानों से भद्र का ही श्रंवण करें, आँख आदि इन्द्रियों से भद्र को ही देखें एवं अनुभव करें। अपने दृढ़ अंगों से, अपने सुदृढ़ शरीरों से सद्–स्तुति–पूजा करते हुए हम ईश्वर–प्रदत्त आयु को प्राप्त कर लें।'

यस्तिष्ठति चरति यश्च वच्यति यो तिलायं चरति यः प्रतक्ङम्।
द्वौ सं निषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः।।
(अथर्व. 4.16.2)

'जो मनुष्य खड़ा है या चलता है, जो दूसरों को ठगता है, जो छिपकर कुछ करतूत करता है, जो दूसरों को भारी कष्ट देकर अत्याचार करता है और जो दो आदमी मिलकर, एक साथ बैठकर जो कुछ गुप्त मन्त्रणाएँ करते हैं उन्हें सर्वश्रेष्ठ वरुण परमेश्वर तीसरा होकर जानता है।'

जुहेरे वि चिन्तयन्तो अनिमिषं नृम्णं यान्ति।
आ दृं हां पुरं विविशुः।।
(ऋ.वे. 5.19.2)

'जो ज्ञानपूर्वक स्वार्थ त्याग करते हैं और लगातार जागते हुए अपने आत्मबल की रक्षा करते रहते हैं, वे परमात्मा की दृढ़ अभेद्य नगरी में प्रविष्ट हो जाते हैं।'

इयं समित् पृथिवी द्वयोर्द्वितीयो तान्तरिक्षं समिधा पृणाति।
ब्रह्मचारी सभिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति
(अ.वे. 11.150.4)

ब्रह्मचारी शरीर की समिधा से, शरीर के त्याग और बलिदान से स्थूल पृथ्वोलोक को तृप्त और परिपूर्ण करता हे, मन की समिधा से, मानसिक तेज के अर्पण से अन्तरिक्षलोक को तृप्त करता है और आत्मप्रकाश से द्युलोक को। वह मेखला से, कटिबद्धता से, श्रम से और तपसे तीनों लोकों का, संसार के सब लोगों का पालन पोषण करता है और उन्हें पूर्णता प्रदान करता है।

अश्मन्वती रीयते सं रमध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजात।।
(ऋ 10.)

'पत्थरों–शिलाओं वाली संसार–नदी वेग से बह रही है। हे साथियो! हे सखाओ! उठो, मिलकर एक दूसरे को सहारा दो और इस नदी को प्रबलता से पार कर जाओ जो हमारे कल्याण कर संग्रह हैं, व्यर्थ के बोझ परिग्रह हैं, उन्हें यहीं छोड़ देवें और कल्याणकारी सुख, बल तथा धन को पाने के लिये हम इस नदी के पार हो जायें।''

'क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे।
मृड सुक्षत्र मृड।'
(ऋ 7.83.3)

हे 'परम तेजोमय! परम पवित्र परमेश्वर! क्षीनता, दुर्बलता के कारण मैं अपने संकल्प से, प्रज्ञा से, कर्तव्य से उल्टा चला जाता हूँ। शुभशक्तिशालिन्! मुझ पर कृपा, कर मुझे सुखी करो।' आज राजा, नेता, रक्षकों, शासकों में कुचरित्र दिग्गोचर है।

यद्न्तरं तद् बाह्यं, यद् बाह्यं तद्न्तरम्।
(अ.वे. 2.30.4)

'जो तेरे अंदर हो वही बाहर हो और जो बाहर हो वही अंदर।'

'केवलाघो भवति केवलादी'
(ऋ.वे. 1.117.6)

'अकेला खाने वाला मनुष्य केवल पाप को ही भोगने वाला होता है।'

अनागसो अदितये स्यामः।
(ऋ 1.25.15 य. 12.12, सा. 6.3.10.4 अ.वे.7.83.3)

अखण्ड–अनन्त चित्तस्वरूपा जगज्जननी अदिति माता के सामने हम निष्पाप, निष्कलंक होकर रहें–उनका अखण्ड चैतन्य और असीम विशालता प्राप्त करने के लिये हम सदा सर्वदा उद्यत रहें।

उद्यानं ते पुरुषं नावयानम्।।
(अ.वे. 8.1.6)

'ओ मनुष्य! तेरा उत्थान ही हो, उन्नति ही हो, नीचे पतन कभी नहीं हो।' It is not glory to fall down every time, but arise up every time. सच्चरित्र प्राप्ति हेतु जीवन में विध्न बाधाएँ आजी ही है। हरिऔध के शब्दों में–

बाधाएँ कब बान्ध सकी है
आगे बढ़ने वालों को।
विपदायें कब रोक सकी है,
मर कर जीने वालों को।।
न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।।
(ऋ.वे. 4.33.11)

'बिना स्वयं परिश्रम किये, बिना थके देवों की मैत्री एवं सहायता नहीं मिलती।'

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
(अ.वे.7.52.8)

'मेरे दायें हाथ में कर्म पुरुषार्थ है और मेरे बायें हाथ में विजय रखी हुई है।'

शुद्धाः पूता भवत यज्ञियाँसः
(ऋ. 10.18.2, अ.वे. 12.2.30)

'बाहर से शुद्ध, अंदर से पवित्र और यज्ञमय जीवन–वाले हो जाओ।'

उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।।
(ऋ 1.15.10, अ.वे. 7.5.53)

'हम अन्धकार स ऊपर ऊँचे उठकर, अधिक उच्च प्रकाश को दखते हुए, सब प्रकाशों के प्रकाशक, सब देवों के देव, सर्वप्रेरक महासूर्य को, सबसे उत्तम ज्योति को प्राप्त करें।'

गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम्।
ज्योतिष्कर्ता यदश्मसि।।

(ऋ.वे. 1.86.10)

'मरुत्–देवो! प्राणशक्तियों! हृदय–गुहा के अँधेरे को विलीन कर दो। सब खा जाने वालों को, राक्षसी शक्तियों को दूर भगा दो जिस दिव्य ज्योति को हम कामना कर रहे हैं उसे प्रकाशित कर दो।'

'उद्दीर्ध्वे जीवो असुर्न आगादप, प्रागात्म आ ज्यातिरेति।
आरैक् पन्था यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः।।

(ऋ.वे. 1.118.16)

'मनुष्यों! उठो, हमारे लिये जनजीवन का प्राण आ गया है। तामसी निद्रा का अन्धकार हट गया हे। नयी दिव्य उषा की ज्योति आ रही है। उसने सूर्य का मार्ग प्रषस्त कर दिया है। हम उस अवस्था में पहुँच गये हैं जहाँ जीवन–शक्तियाँ जीवन को बढ़ाती रही है।'

इद्मिन्द्र श्रृगुहि सोमप यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि।
वृश्चामि तं कुलिशेनैव वृक्षं यो अस्माकं मन इद् हिनस्ति।।

(अ.वे. 2.12.3)

'सोमपायी इन्द्रदेव! सुनिये, मैं आपका ध्यान करता हुआ आप से पुकार–पुकार कर कह रहा हूँ, जो भी मेरे मन की हत्या करने आयेगा, मुझे पतन की ओर ले जाने का प्रयत्न करेगा, उसे काट डालूँगा, जैसे कुल्हाड़ी वृक्ष को काटा जाता है।'

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्रम।।

(अ.वे. 2.11.5)

'मेरे आत्मन् तू पवित्र है तू तेजोमय आनन्द स्वरूप और ज्योतिर्मय है। तू मनुष्य के सामान्य स्तर को अतिक्रम करके उच्चतर कल्याण को प्राप्त कर ले।'

'अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो
व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः।

(अ.वे. 19.51.1)

'मैं परिपूर्ण हूँ, मैं अखण्ड हूँ। मेरी आत्मा अखण्ड है, चक्षु–शक्ति अखण्ड है, श्रीशक्ति अखण्ड है। मेरे प्राण विश्वात्मा के प्राण से संयुक्त हैं, मेरे श्वासोच्छ्वास भी विश्वपुरुष के श्वास–प्रश्वास से संबद्ध हैं। मेरी आत्म–विश्वात्मा से विभक्त नहीं है। मेरी सम्पूर्ण सत्ता उसमें अविभक्त एवं अखण्ड ह।

यत्र ज्योतिरजस्त्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम्।
तस्मिन् मां धेहि य पवमानामृते
लोके आक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रवः।।

(ऋ.वे. 9.113.7)

'आनन्दघन, अमृतस्वरूप सोमदेव! परम पावन सोमरस की अनन्त धाराओं के साथ मुझ आत्मा के लिये स्रावित होओ, मुझे उस अक्षय अमृतलोक प्रतिष्ठित कर दो जिसमें शाश्वत ज्योति है और अनन्त आनन्द साम्राज्य है।'

इस प्रकार हम वेदों में चारित्र्य के उद्बोधक मन्त्र भरे पड़े हैं। यदि इन्हें हम अपना आदर्श बना लें, तो हमारा चरित्र सम्पूर्णतया सुनिर्मित हो जाय और हम आदर्श चरित्र के प्रतीक बन जाये। आज इसी की राष्ट्र को, परिवार और समाज को अपेक्षा है, आवश्यकता है। इस प्रकार वेदों का पर्यवेक्षण परिशीलन गवेषण व अन्वेक्षण करने से ज्ञात होता है कि चारित्रिक, शैक्षिक वैशिष्ट्य पदे–पदे दृष्टिगत होकर समस्त विद्याऐं दृग्गोचर होती हैं। यथा महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के वेदविचार–प्रकरणान्तर्गत लिखा है कि ''वेदेषु सर्वाः विद्याः सन्ति मूलोद्देशतः''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. (मनु.2 अ.)
2. (मनु.2.)
3. (ऋ.वे.10.103.13)
4. (अ.वे.1,4)
5. (अ.वे.1.6)
6. (य.वे.40,16)
7. (अ.8.1.8)
8. (य.वे.23.15)
9. (अ.वे.6.45.1)
10. (मनुस्मृति 2/6)
11. (ऋ0 4/33/6)
12. (ऋ.7.104.12,अ.वे. 8.4.12)
13. (ऋ 8.2.28, अथ.20.18.3)
14. (ऋ10.57.1,अ.वेद. 13.1.59)
15. (ऋ.वे.1.3.11)
16. (य.वे. 36.2)
17. (य.वे.4.28)
18. (य.वे. 6.14)
19. (का.सं. 31.23, य.वे. 13.19)
20. (य.वे. का.सं. 3.22)
21. (ऋ.य.सा.वे. 1.89.8,24.31.9.3)
22. (अथर्व. 4.16.2)
23. (ऋ.वे. 5.19.2)
24. (अ.वे. 11.150.4)
25. (ऋ 10.)
26. (ऋ 7.83.3)
27. (अ.वे. 2.30.4)
28. (ऋ.वे. 1.117.6)
29. (ऋ 1.25.15 य. 12.12, सा. 6.3.10.4 अ.वे.7.83.3)
30. (अ.वे. 8.1.6)
31. (ऋ.वे. 4.33.11)
32. (अ.वे.7.52.8)
33. (ऋ. 10.18.2, अ.वे. 12.2.30)
34. (ऋ 1.15.10, अ.वे. 7.5.53)
35. (ऋ.वे. 1.86.10)
36. (ऋ.वे. 1.118.16)
37. (अ.वे. 2.12.3)
38. (अ.वे. 2.11.5)
39. (अ.वे. 19.51.1)
40. (ऋ.वे. 9.113.7)